IJAER/ May 2012 /Volume-1/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

संस्कृत साहित्य एवं मानवीय मूल्य

अवधेश कुमार मिश्र
व्याख्याता, साहित्य
राजकीय विठ्लनाथ सदाशिव पाठक आचार्य
संस्कृत महाविद्यालय, कोटा (राज.)

ऋग्वैदिक ऋचा 'आत्मनोमोक्षत्वं' का अनुगमन करते हुए प्राचीन महर्षिगण ने विश्वकल्याण की निरन्तर कामना की है। **''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्''** की उदात्त भावना के क्रियात्मक सफलीकरण एवं सरलीकरण हेतु मानव एवं प्रकृति के मध्य समन्वयात्मक समीकरण कैसे स्थापित किया जाये, तद् विषयक चिन्तन भी मानवीय प्रकृति मे रहे हैं। जगत् दर्शन की जिज्ञासा एवं मनीषियों की ज्ञान पिपासा की निवृत्ति की श्रृंखला में महर्षि याज्ञवल्क्य का यह कथन है –**आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यः, मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः। आत्मनो वाऽरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विज्ञातं भवति** (बृहदारण्यकोपनिषद्)[1] अर्थात् आत्मा को देखना चाहिए। आत्मसाक्षात्कार की सरणि का शुभारम्भ मानवीय मस्तिष्क में इसी रूप में प्रकट होता है। जागरण का उपदेश कठोपनिषद् की पक्तियाँ भी देती है। यथा–

उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।। (कठोपनिषद् – 1/3/14)[2] तत्व ज्ञानार्जन की 'मोक्षार्थ प्रेरणा' ही संस्कृत वाङ्मय का मूल प्रयोजन है। संस्कृत वाङ्मय विशेष रूप से मानवता के उत्कर्ष एवं सम्पूर्ण वैश्विक चराचर संगठन के कल्याणार्थ प्रवृत्त रहा है। जिससे समाज में जीवन मूल्य की श्रृंखला सुदृढ हुई है। संहिता, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यकग्रन्थ, उपनिषद् जैसे अमूल्य ग्रन्थों ने मानव को जगत् कल्याण एवं विश्वशान्ति का उपदेश दिया हैं। वेद ज्ञानपरायण एवं कर्मपरायण सहित सत्मार्ग पर चलने का उपदेश देते है, जिसकी वर्तमान में हमें बेहद आवश्यकता है। अतएव मनु का कथन है कि – **सर्वज्ञानमयो हि सः**। ऋग्वैदिक संज्ञान सूक्त सामाजिक, राष्ट्रीय और आर्थिक चिन्तन में समवेत स्वर या समन्वय की भावना का निर्देश देता है – **संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।** विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व की उदात्त भावना से ओत प्रोत वैदिक मन्त्रों में

प्राणी मात्र में परस्पर सौहार्द मैत्री तथा सहायता की भावना की उपलब्धि नितान्त स्वाभाविक है। विश्व की सुख समृद्धि एवं मंगल के निमित्त ऋषि की यह प्रार्थना उपादेय है –

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पारसुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।[3]

वेद मानव मात्र के कर्तव्य बोध के लिए सबसे प्रमाणिक ग्रन्थ है। इनमें कर्तव्याकर्तव्य का यथास्थान विस्तृतवर्णन और प्रतिपादन है। इनमें गुरु–शिष्य, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, माता–पिता, समाज और व्यक्ति, विश्वबन्धुत्व, परोपकार, उद्योग, अतिथि सत्कार का विस्तृत वर्णन मिलता है। वेदों में वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था का चित्रण प्राप्त होता है। वेदों में नारी को अत्यधिक आदर दिया गया है, वह पुरुष की सहयोगीनि एवं सहायक है। ऋग्वेद का कथन है कि – जायेदस्तम् अर्थात् जाया – पत्नी, इत् – ही अस्तम् – घर है। इसको ही संस्कृत में कहा गया है – **न गृहं गृहम् इत्याहुः, गृहिणी गृहमुच्यते** घर को धर नहीं, अपितु गृहिणी को घर कहते है। संस्कृति – सभ्यता –निर्माण और विकास में नारी के योगदान को वेदों में अद्वितीय बताया है। नारी मातृरूप में अत्यन्त पूजनीय थी। **बन्धुर्मेमाता पृथ्वी महीयम्** तथा **माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या** के द्वारा माता के रूप में उसकी पग पग पर स्तुति की गई है। महर्षि मनु का यह कथन –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफला कियाः।।[4]

वस्तुतः यह उक्ति ही सामान्य नारी जाति के प्रति धर्मशास्त्र प्रणेताओं के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। भारतीय संस्कृति ही विश्व की वह प्राचीनतम संस्कृति है, जिसने अज्ञानान्धकार से आवृत्त विश्व सभ्यता को अपने ज्ञान से आलोकित किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों एवं आरण्यक ग्रन्थों ने हमें सादगी ओर सदाचार का सन्देश दिया, जिससे मानवता फलती–फूलती रहे। ऐतरेय ब्राह्मण की प्रमुख शिक्षा है – चरैवेति – चरैवेति चर एव इति अर्थात् चलते रहो, चलते रहो। सदा कर्म करते रहो, सदा उद्योगशील रहो, निरन्तर कर्मठ बने रहो। कर्मनिष्ठ जीवन हि जीवन है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ – हवनादि का वर्णन है। यज्ञ से मानवीय जीवन खुशहाल एवं प्रर्यावरण शुद्ध होता है। आरण्यकों ने मनुष्य को धर्म अर्थात् कर्तव्य का मंगलमय उपदेश दिया है।

उपनिषद् ग्रन्थ भौतिक – व्यावहारिक – सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन के लिए उपदेश प्रस्तुत करते है। जिसको ग्रहण करना प्रत्येक मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। उपनिषदों ने विद्ययाऽमृतमश्नुते, उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत[5] का सन्देश दिया तथा जीवन की सच्चाई को प्रस्तुत किया हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय।**।[6] वर्णित यह उपदेश सर्वोत्तम है। उपनिषदों ने हमें ज्ञान के रास्ते पर चलने

का उपदेश दिया है। षड् वेदागों ने संस्कृत में ज्ञान विज्ञान की नई शाखा खोली तथा इन वेदागों ने संस्कृत साहित्य को जनता के समीप लाने का प्रयास किया है।

भारतीयदर्शन अध्यात्मवादी, मनोवैज्ञानिक, व्यावहारिक, आशावादी, अपलायनवादी, समन्वयवादी तथा आदर्शमूलक है। भारतीय दर्शन कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीन मार्गों को मानव जीवन के साध्य का साधन मानता है। यह मनुष्य की अभिरुचि, प्रवृत्ति और क्षमता के अनुकूल किसी साधन को अपनाने का परामर्श देता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि ज्ञान मार्ग सर्वश्रेष्ठ है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान मार्ग को नहीं अपना सकता। इसलिए भक्ति और कर्म को भी अपनाया जाता है। ये तीनों मार्ग भिन्न न होकर एक दूसरे से जुडे हुए है। भारतीय दर्शन यहॉ समन्वयवाद को प्रस्तुत करता है। उपनिषदों का सारभूत श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन जगत् से जुडे शाश्वत् मूल्यों का निर्देश है। गीता में श्री कृष्ण ने समग्र जीवन मूल्यों यथा – नैतिक, साामाजिक, शैक्षिक, अध्यात्म, योग, दर्शन सभी का भली–भॉति विश्लेषण किया हैं। श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के वर्णन से ही गीता सर्वशास्त्रमयी है। गीता के ज्ञान ने विश्व समुदाय को सामाजिक समानता का सन्देश दिया है। पुराणों ने जनता की भाषा को सरल स्वरूप देकर धर्म, संस्कृति का उपदेश दिया है। महाभारत ने धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष का सन्देश दिया है। महर्षि वेदव्यास ने भारतीय अर्थनीति –राजनीति तथा अध्यात्म शास्त्र के सिद्धान्तों का सारांश इतनी सुन्दरता के साथ इन ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है, यह वास्तव में भारत के तत्वज्ञान का कोष है। व्यास जी की राष्ट्र भावना बडी ही उदात्त विशुद्ध तथ ओजस्विनी है। महर्षि वाल्मीकि की रामायण लोक धर्म का कल्याणकारी उपदेश देती है। रामायण ने पिता–पुत्र, भाई–भाई, पति–पत्नी का आदर्श स्वरूप समाज में प्रस्तुत किया है, जो इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान् महावीर और बुद्ध ने संसार को तप, त्याग, अहिंसा, सत्य, उदारता, दया, प्रेम और समानता का सदेश दिया हैं। सत्य और अहिंसा हमारे जीवनाधार है और पंचशील हमारा राष्ट्रीय आदर्श।

संस्कृत की यह लोक कल्याणकारी विरासत आगे बढ़ती गयी। व्याकरण, शब्दकोष, ज्योतिष, आयुर्वेद जैसे विषयों से संस्कृत में ज्ञान–विज्ञान की नवीन शाखाओं का उद्भव हुआ। साहित्य के साथ ही समाज भी आगे बढ़ता गया। संस्कृत ने समाज की इन आवश्यकताओं को पूर्ण किया हैं। चाणक्यनीति ने समाज में व्यवस्था बनायी तथा सबके अधिकारों का निर्धारण किया। अर्थशास्त्र ने न्याय और सुरक्षा का प्रबन्ध किया है। हमारे देश के संविधान को संस्कृत के अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र के आधार पर स्वरूप दिया है। अनेक कवियों व नाटककारों ने समाज की अच्छाईयों व बुराईयों को अपने कलम का आधार बनाया और समाज को बुराईयों से बचाकर अच्छाईयों की ओर प्रेरित किया है। महाकवि कालिदास का वह अमर संदेश जिसने शकुन्तला के जीवन को पवित्र प्रेम

का प्रतिबिम्ब बनाकर गृहस्थ जीवन को सांस्कृतिक – व्यावहारिक – सामाजिक मूल्यों से युक्त बनाया है। पञ्चतन्त्र हितोपदेश कथा ग्रन्थों में नैतिक उपदेश और सदाचार की बातों को सरलता से प्रस्तुत किया है। साहित्य, कला, कौशल और ज्ञान–विज्ञान की यह विपुल विरासत जो इस देश को परम्परा से मिलती रही, संस्कृत की ही देन है। संस्कृत हमें जीवन की उन्नति के लिए त्याग–तपस्या–सदाचार–सत्य और ईमादारी का सन्देश देती है। यह भी सत्य है कि सत्य की धरती पर ही भारतीय चेतना का जन्म हुआ है। सत्य विजय होता है – **सत्यमेव जयते** ।

मानव विधाता की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है। न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित् इसका आशय है कि मानव जीवन सर्वाधिक मूल्यवान् है। व्युत्पत्तिपरक दृष्टि से देखा जाये तो मूल्य शब्द मूल धातु यत् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। भ्वादिगण मूल धातु प्रतिष्ठार्थक है – **मूल प्रतिश्ठायाम्। पाणिनीय सूत्र– नौवयोधर्मविशमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्थतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमित – सम्मितेशु (4/4/91)** से मूल्यानि आम्नाय से मूल्यम् अर्थप्राप्त होता है। मूल्य शब्द अंग्रेजी के Value शब्द का समानार्थी है। Value शब्द लैटिन के Valere से बना है। जिसका अर्थ श्रेष्ठ, सुन्दर होता है। मूल्य शब्द के अर्थ में शिवं व सुन्दरं का समन्वय हुआ है।[7]

मानव के लिए मानसिक, बौद्धिक दृष्टि से क्या करणीय है ? आचार, विचार और व्यवहार की दृष्टि ये जीवन कैसे जीना चाहिए ? जीवन को जीने का क्या प्रयोजन होना चाहिए ? उस प्रयोजन की प्राप्ति के लिए किस साधन को अपनाना चाहिए ? ऐसे हि कुछ प्रश्नों के उत्तरों से जीवन मूल्यों की संरचना हुई। ये उत्तर समाज द्वारा दिये गये या फिर व्यक्ति विशेष द्वारा, यह महत्वपूर्ण नही था, जितना की उनकों प्राप्त सामाजिक स्वीकरोक्ति, जो कि '**सर्वजन हिताय**' की दृष्टि से दि गई हो। इस तरह एक सामाजिक मानव की मानसिक, बौद्धिक व शारीरिक क्रियाओं के लिए निर्धारित मापदण्डों को मानवीय जीवन मूल्य कहा जा सकता है। मानव जीवन की दृष्टि से स्वतः शुभ और स्वतः अशुभ क्या है ? कुछ आचार विचार और व्यवहार तथा वस्तुएं जिन्हें शुभ की स्वीकरोक्ति प्राप्त है, उनके विषय में यह अद्यतन चिन्तनीय है कि कौन कितनी मात्रा में शुभ है ? जीवन मूल्यों की गणना संगणकीय क्षमता एवं शक्ति के दुरुपयोग के अतिरिक्त कुछ नही है, क्योकि विभिन्न मानवीय समाजों में जीवन मूल्यात्मक वैविध्य तथा एक समाज विशेष में भी युगानुसार जीवन मूल्यों में उपलब्ध भिन्नताएं इनकी अन्नत संख्या का प्रमाण है।

आज मूल्य शब्द दर्शनशास्त्र, समाजविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि के साथ सम्बन्धित होकर अनेकार्थी हो गया है। मानव मूल्यों की विवेचना मुख्यतः दर्शन ग्रन्थों के आधार पर की जाती है। समस्त धर्म, दर्शन, साहित्य जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति करते रहे है। उच्चतम जीवन की उपलब्धि के लिए मानवता जिन जिन तत्वों का आदान करती है, वे जीवन मूल्य है। जीवन मूल्यों में मानवता

के प्रत्येक क्षेत्र को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता है। मूल्यों में नैतिकता भी समाहित रहती है और नैतिकता से सम्बद्ध मूल्यों को ही नैतिक मूल्य कहते है।

भारतीय मनीषा द्वारा मानव–जीवन में वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों हि दृष्टियों से जीवन मूल्यों को अप्रस्तुत रूप से एक भिन्न पर्यायवाची 'धर्म' द्वारा व्यक्त किया गया। वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, पुरोहित धर्म, मन्त्रीधर्म, सेवकधर्म, पितृधर्म, पुत्रधर्म, आदि समष्टि व व्यष्टि की औचित्यपूर्ण अवधारणा से अनुमोदित अनेकविध जीवनमूल्य शब्द एवं उसके अर्थ के प्रयोग किये गये, किन्तु ये समस्य प्रयोग ससीम थे, अर्थात् उनकी मूल्यात्मकता समाज में और व्यक्ति के जीवन में एक परिधि विशेष तक ही सीमित थी। इसलिए जीवन–मूल्यात्मक उपर्युक्त निर्देश मूल्यवान् होते हुए भी मानव जीवन के समग्र अम्युदय की दृष्टि से उतने मूल्यवान् नहीं थे और यही कारण है कि जीवन मूल्यात्मक विरोधाभास सर्वत्र दिखाई देता है। मानव क्यों ? किसलिए ? और किस तरह जिये ? इन्हीं प्रश्नों का समाधान, जिसमें निहित है, वही तो जीवन मूल्य है। जीवन मूल्यों को परिभाषित, व्याख्यायित, विश्लेषित तथा उसके विषय विस्तार को निरूपित करने में जो सफलता भारतीय चिन्तन व उसके चिन्तकों को मिली है, उसका अंशमात्र भी विश्व साहित्य में उपलब्ध नहीं होता है। अब इसका एकमात्र प्रमाण है, पुरूषार्थ चतुष्ट्य की अवधारणा। जिसमें व्यष्टिगत–समष्टिगत दोनों ही प्रकार के सुखों का सानुक्रम समावेश ही नहीं, अपितु परमनिश्रेयस्, परमशुभ, परं लक्ष्य, शुभतम साध्य का मानव योनि का तुलनात्मक दृष्टि से एकमात्र 'लक्ष्य' सुनिश्चित्, सुनिर्धारित, सुलक्षित एवं सुविश्लेषित किया गया है।

शाश्वत् जीवन मूल्यों पर समष्टिगत दृष्टिकोण से विचार करें, तो हमें ज्ञात है कि उनका स्वरूप तत्वत्रय 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की न केवल मानव केन्द्रित, अपितु उससे समस्त जगत् की ही समन्वित अभिव्यक्ति का परिणाम है। जीवन मूल्यों का सत् होना अनिवार्य है। असत् जीवन मूल्य मानव जीवन की दृष्टि से मूल्य हीन है। मात्र सत् हो जाने पर कोई भी जीवन मूल्य जब तक जीवन मूल्य नहीं माना जा सकता, जब तक कि वह शिव व सुन्दर न हो। व्यक्तिगत शिवं और सुख को भारतीयों ने कभी श्रेष्ठ नहीं माना है। व्यक्तिगत शिवं तभी जीवन मूल्य की संज्ञा को प्राप्त कर सकते है, जबकि उन्हें निर्विवाद सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हों मानव का समग्र अध्ययन, उसके गुण–दोषों का विवेच्य व्यष्टिगत सन्दर्भ में न होकर समष्टिगत होता है। एक का नहीं अपितु जो सभी का लक्ष्य होना, वही वस्तुतः सत्यं शिवं सुन्दरं से समन्वित हो सकता है। मानव हो या न हो परन्तु मानवता अनिवार्यतः सत्यं–शिवं–सुन्दरं होती है। इसलिए जीवन मूल्यानुसार जीने से ताप्तर्य है, मनुष्य यह सोचकर जीवन जीये कि हम मनुष्य है और एक ही मानवता के अंश है – इस प्रकार की सार्वभौमिकता ही उत्कृष्ट जीवन का आधार है। मानव मात्र के उत्थान हेतु पुरूषार्थ चतुष्ट्य

आदि ऐसे मानव जीवन मूल्य है, जो मनुष्योत्थान के सम्पूर्ण साक्षी है। अतः स्पष्ट है कि धर्म परक जीवन में मूल्यों की शाश्वत अभिव्यक्ति ने ही इन काव्यों को कालजयी बनाया है।

आधुनिक युग में मूल्य मीमांसा द्रुत गति से पल्लवित हो रही है। आज का अध्येता मूल्य सिद्धान्त का अध्ययन करते समय मूल्य शब्द के प्रति गम्भीर है। मानव की विकास यात्रा में मूल्य ही दीपस्तम्भ रहे है। आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक, राजनैतिक, क्षेत्र में जीवन मूल्यों की स्थापना जगत् कल्याण के लिए आवश्यक रही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन मूल्य संस्कृत के स्वतन्त्र विषय के रूप में अपेक्षाकृत नूतन विषय अवश्य है परन्तु मानवीय संरचना सदैव मूल्याश्रित रही हैं। संस्कृत वाङ्मय जीवन मूल्यों का व्यापक विवेचन है, जिससे विश्व संरचना में जीवन मूल्य की पहचान मिलती है तथा मानव का सर्वांगींण विकास होता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता और बढ गई है क्योंकि प्रेम, अहिंसा, सहिष्णुता, आदि सामाजिक मूल्य अपने महत्व से निरन्तर क्षीण हो रहे है। भारतीय संस्कृति के वे आदर्श एवं संकल्प आज युगों की प्रवाहमान धारा के मध्य में अटक गये है, जिससे मनुष्य कर्तव्य – अकर्तव्य के यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ हो रहा है। इसलिए जीवन मूल्यों को स्थापित करके जगत् का कल्याण सम्भव है तथा समाज, राष्ट्र और विश्व की उन्नत्ति में योगदान दिया जा सकता है।

संदर्भ सूची –

1. बृहदारण्यकोपनिषद्–2/4/8।
2. कठोपनिषद् – 1/3/14।
3. ऋग्वेद।
4. मनुस्मृति–डॉ. कमलनयन शर्मा, पृ.–29 ।
5, ईशावास्योपनिषद्, कठोपनिषद् ।
6. बृहदारण्यकोपनिषद्